Chap 9

अध्याय नौ

उपसंहार

कवि डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' आधुनिक काल के उतरार्ध के बहुत ही सक्षम और सार्थक गीत–हस्ताक्षर रहे है विगत पृष्ठो पर इनके साहित्य–अवधान की विस्तृत चर्चा की गई है। कवि ने वैसे तो गीत से लेकर अगीत, कविता से नई कविता तक और छायावाद से लेकर आधुनिक कविता के तमाम पड़ावों पर अपनी प्रातिभ लेखनी का चमत्कार प्रस्तुत किया है किन्तु चमत्कार प्रस्तुत करना कवि का कोई पूर्वाग्रही ध्येय नही रहा है क्योंकि कवि 'तरुण' के गीतों में एक सहज मस्ती का आलम इस प्रकार छाया हुआ है कि उसने उनके तमाम गीतो मे अपनी वरिष्ठता, रागात्मकता और चिन्तन की गहनता के साथ–साथ रसात्मक व्यजकता को भी प्रसारित किया है। कवि की तमाम काव्य उपलब्धियो मे उनके गीतो का स्वर सवेदना और संप्रेषण से सम्पन्न अपने पूर्ण प्रभावक रूप मे सामने आया है। कवि कहता है–

"गा, मेरे कवि!
थिरक उठे अग–जग में तेरी वीणा की झंकार मधुर, कवि!
गा, मेरे कवि!
जग का कण–कण हो ज्योतिर्मय,
हो प्रकाश में अन्धकार लय,
यह जगती होवे मंगलमय,
अणु–अणु की गति होवे मधुमय,
विचरें निर्भय–जग–आँगन में जुगनू, ग्रह–नक्षत्र, दीप, रवि!" [1]

इसी तरह कवि अपने गीतकार को अपनी रचना–धर्मिता पर सम्पूर्ण रूप से आवृत कर लेता है, वे कहते है–

"मेरे गीत, मौन मत होना!
चिर दरिद्र सा जीवन–पथ पर,
भटकूँ जब ले काया जर्जर,
तब तुम आ उर की प्राची से, बरसाना ऊषा का सोना!
हों रस–हीन दिशाएँ सारी,
उजड़ चले जीवन–फुलवारी,
तब तुम बरस जलद–से रिमझिम, मधु से मेरे प्राण भिगोना!" [2]

कवि अपनी अन्तिम सॉस तक गीतों की गंगा को अविराम प्रवाहित करना चाहता है। वह किसी भी पडाव पर मौन होकर बैठने के पक्ष मे नही है जैसे–

"जब जलूँगा मैं चिता पर!
मौन होंगे गान मेरे,
मुक्त होंगे प्राण मेरे,
पाप, सारे शान्त होंगे; भस्म होगी देह नश्वर!" [3]

कवि राग का गायक है। वह रंग और रस का गायक है। वह जीवन के विजय का उद्घोषक है और विजय अभियान के लिए सतत् द्वन्द्व का भी पक्षधर रहा है। कवि के समग्र गीतों में जीवन के प्रति उसकी अनन्त आस्था मानव समुदाय के लिए उदात्त उद्भावनाएँ, प्रवृत्ति के लिए सवेद्य भाव–दृष्टि तथा एक गहन दर्शन से युक्त गम्भीर वैचार्य की उनमें सर्वत्र देखी जा सकती है।

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' , 'गा मेरे कवि', पृष्ठ 155
2 वही, 'मेरे गीत मौन मत होना', पृष्ठ 154
3 वही, 'अन्तिम दिन', पृष्ठ 149

कवि सौख्य का गायक है तो करुणा का व्याख्याकार भी है। वह हसी और मुस्कुराहट का गीतकार है तो सवेदनाओं से सराबोर ऑसूओ का भाष्यकार भी है। वह पीडाओ का वक्ता है, तो अनन्त सौख्य से सम्पन्न उदात्त मनोस्थितियो का अधिवक्ता भी है। पीडा के सन्दर्भ में कवि न तो अपनी पराजित भावना को उद्घाटित करता है और न ही अपनी बाध्यताओ पर कापुरुषी ऑसू बहाता है, जैसे–

"इस पीड़ा का उपचार न कर!
तू छेड़ न बजती वीणा को; निस्पन्द–हृदय का तार न कर!
इस पीड़ा का उपचार न कर!
होता है जिसका मग्न, हृदय,
उसके जीवन में मधु अक्षय!
तू नष्ट मनोहर मेरे इन मधु–सपनों का संसार न कर!" [1]

वह अपने उदास हृदय को सतत् सात्वना देता हुआ एक नवीन ऊर्जा से सम्पन्न होने के लिए उत्प्रेरित भी करता है। वह कहता है–

"स्वाभाविक सुख–दुख—शीत–घाम!
दोनों से धरती रस लेती,
अति से न, सहज सुख–दुख में ही–
पकती हैं जीवन की खेती।
मन की हंसिनि सुख–सरसी में
पा कमल–कली पुलकित होती,
दुख–सागर में भी मिलते हैं
जीवन के चमकीले मोती!" [2]

वह बार–बार जीवन के दर्शन को अनुभूतियो की कसौटी पर कसता है और चिन्तन के प्रखर पडावों पर एक प्रश्न चिह्न अकित कर देता है–

"क्या जीवन आनन्द–अवधि है?
इच्छा का मंजुल नर्त्तन है?
मधु–वसन्त–चन्द्रिका–विचुम्बित–
जल–तरंग का मृदु कम्पन है?" [3]

वह अपने संत्रस्त और पीडित जीवन से हारता–थकता नहीं है बल्कि उसकी निष्ठुरता को सहज रूप में स्वीकार कर लेता है जैसे–

"गिरि–पथ–सा है मेरा जीवन!
अन्ध गहनतम खड्ड भयंकर,
चट्टानें, कंकड़, कटु पत्थर,
चारों ओर दिखाई देते बस ये ही उस पथ पर निर्जन!" [4]

कवि न तो मिथ्याकांक्षी है और न ही अत्याधिक भौतिक लिप्साओ मे सलग्न, किसी एक निश्चित पडाव पर ठहर

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'इस पीडा का उपचार न कर', पृष्ठ 135
2 वही, 'सुख–दुख', पृष्ठ 116
3 वही, 'जिज्ञासा', पृष्ठ 115
4 वही, 'मेरा जीवन', पृष्ठ 111

विश्राम भी लेना चाहता है। जीवन की मूल्यहीनता से थककर वह एक जगह ठहर कर कुछ आश्वस्त भी होना चाहता है जैसे–

"कहीं तो लेने दो विश्राम!
आँधी के उठ रहे बगूले, बड़ी कड़ी है घाम!
कहीं तो लेने दो विश्राम!
इस धरती पर सरस–सलोना,
एक चाहिए कोमल कोना–
थकी पाँख ले जिधर उड़ सकूँ–जब हो जावे शाम!" [1]

कवि अपनी सवेद्य पीड़ाओं का साधारणीकरण कर देता है। दूसरों के दर्द में अपने दर्द को सन्निहित करके उसकी समग्रता का अनुभव करता है। वह इस अनुभूति पर किसी भी बंधन को स्वीकार नहीं करता–

"अपनी–अपनी ज्योति लिये सब तारों–से चमको,
मुक्ति–पंथ पर रोक सकेगा कौन कहो हमको?
आकाश—सभी का है!
सौ योजन से सपनों की रानी को विधुवदनी–
उतराओं न! मन की तरल तरंगों पर अपनी;
विश्वास—सभी का है!" [2]

न तो वह कभी थकता है और न ही पराजय स्वीकार करके युद्ध के मैदान से भागने की मन:स्थिति में आता है। वह स्पष्ट उद्घोष करता है–

"तू अपने पथ पर बढ़ता चल।
अन्धकारमय है तेरा पथ,
पर, बढ़ने ही दे जीवन–रथ,
अग्नि–बाण बन छूट पड़ा तू, सघन चीरता तम को श्यामल–
मन में अमर प्रकाश लिये चल,
अटल आत्म–विश्वास लिये चल,
सतत् काटता चल डाँडों से तू अथाह भव–सागर का जल।" [3]

वह इसे और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करता हुआ कहता है–

"संघर्ष कर, आहें न भर!
जीवन न फूलों की डगर!
संघर्ष कर!
वंशी पटक, हे धनुर्धर!
जीवन, भयंकर है समर!
गांडीव तू अपना उठा–
जीवित तुझे रहना अगर;
संघर्ष कर, आहें न भर!

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'कही तो लेने दो विश्राम', पृष्ठ 98
2 वही, 'सभी का है', पृष्ठ 96
3 वही, 'तू अपने पथ पर बढ़ता चल', पृष्ठ 74

सूरज उगा अरुणिम उधर,
पड़ता सुनाई शंख–स्वर!
जीवन न रजनी भोग की–
यह जागरण का है पहर!" [1]

वह अगर इन पीडाओं से ग्रस्त है तब भी अपने जीवन को सरस गीतो की झंकाते स्वर लहरियों मे झंकृत कर देना चाहता है–

"गीत–भरा हो मेरा जीवन!
मेरा जीवन हो वह तरु नव–
जिस पर लाल लदे हों पल्लव,
स्वर्ण–उषा की मृदु आभा में–
सिहराते जो नीरव–नीरव;
रंग–बिरंगी चिड़ियाँ जिनमें करती हों कोमल कल–कूजन!" [2]

कवि के समग्र गीतो में सत्रास, घुटन, बाध्यताएँ वगैरह तो है ही साथ में भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति भी एक उदात्त अवधारणा भी है, जो सर्वत्र परिलक्षित होती है। 'माटी के घर', 'खेत की ओर', 'गॉव की ओर', 'गॉव की सॉझ', 'ग्राम–वधू', 'ग्राम विरहिणी दीप जलाती', 'निर्जन तट', 'हिमांचला', 'प्रकृति की गोद में', 'सावन', 'पावस–श्री', 'दूर गगन में तारा टूटा', 'मै बनवासी होता' आदि अनेक गीतों में भारतीय ग्राम्य परिवेश की महक विद्यमान है। प्रकृति के सौन्दर्य से सराबोर उनके गीत, इस देश की धरती से जुडे हुए गीत है, धर्म और संस्कृति से जुड़े गीत हैं, चिन्तन और दर्शन की उच्चस्थ स्थापनाओं से संश्लिष्ट गीत हैं, जिनमें मदरिम बासूरी के संश्लिष्ट स्वर हैं, जिनमें सुगन्धित फूलों की क्यारियॉ खिलखिला रही हैं, जिनमें गाँव है, झोपड़े हैं, नहर है, तालाब हैं, जलाशय हैं, कमल है, तितली है, भवरे है, धरती हैं, आकाश है, ऋतुओ के रंग हैं, पावस की मदरिम फुहार है, बादल हैं, बिजली है, घटाएँ हैं, सर–सरिता और सरोवर है, गिरि शिखरो से प्रवाहित निर्झर हैं, चमकती बिजलियॉ हैं, गरजते बादल है, मस्ती से झूमते पेड हैं, पेड़ों से लिपटी वल्लरियॉ है, मेहनत करते कृषक हैं, गायो के पास खडे–नहाते बछडे है, खेत हैं, खलिहान हैं, चौपाल हैं तो दूसरी ओर शहर के प्रदुषित अभिसार है, दुर्गन्ध के परिसर है, सम्बन्धो के कालुष्य हैं, अनास्थाओं मे घिरे टूटते मूल्य है, जर्जरित समाज है, भ्रष्ट आचरण की अपावन संधियॉ है, कलुषित राजनीति के दु:चक्र हैं तो साथ मे एक उदार और मनस्वी महामानव की छवि भी हैं, जो अपनी अनन्त आभा लिए विश्वासों के महल गढता रहा है। कवि अपने यथार्थ से न तो कभी मुहॅ मोडता है और न ही कभी इस कटु सत्य से अलग होने की क्लीवता प्रदर्शित करता है। कभी तो वह मनुष्य को ही अपना इष्ट मानकर एक अलग मानवीय श्रद्धा को व्यक्त करता है तो दूसरी और वह भगवान के चरणो मे अपनी श्रद्धा और भक्ति को समर्पित करता हुआ दिखलाई देता है–

"देव, तुम्हारे श्री–चरणों पर फूल चढ़ाने आया मैं!
जन्म–जन्म के दुखड़े तुमको आज सुनाने आया मैं!
उलझ–उलझ कोमल चरणों में, पोंछ पलक से पद–रज को,
रो–रो कर प्रभु, अपने जी की जलन मिटाने आया मैं!" [3]

इसी तरह कवि न तो अपनी ईश्वर–भक्ति को नकारता है और न ही कहीं भी अपनी नास्तिकता का इजहार करता है।

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'सघर्ष कर', पृष्ठ 73
2 वही, 'गीत भरा हो मेरा जीवन', पृष्ठ 84
3 वही, 'देव, तुम्हारे श्री–चरणो में', पृष्ठ 222

जहाँ तक कवि तरुण गीतों के मूल्यांकन का प्रश्न है, किसी भी कलाकार की कथा को मूल्यांकित करने की मूल भावनाओं और उसके कथ्योदेश्य को समझने में समर्थ न हो जाएँ और उनकी रचनाप्रक्रिया के मूल स्रोतों एवं प्रेरणाओं को न समझ लें। कवि की भावात्मक संवेदना और रचनात्मक वैचारिक स्थापनाओं को जानने के लिए हमें उसके समग्र कृतित्व का गहन अध्ययन करना पड़ता है। कवि तरुण का समग्र गीतकाव्य संभवतः प्रकाशित हो चुका है और हमें सुलभ भी है, इस समस्त काव्य वाचन से हम इस निष्कर्ष पर आ सकते हैं कि कवि एक अप्रतिम मेधा का स्वामी एक विरल प्रतिम क्षमता का वाहक और एक अभिनव कला दृष्टि का पारखी कलाकार था। उसके गीतों में यह सबकुछ है, एक जागरुक कलाकार की आचार संहिता में संलग्न रहता है।

कवि तरुण के गीतों में खुशियों की खुशबू है, आनंदोत्सव के हर्षोल्लास हैं, उमंग है, उद्वेग है, मुस्कराहटें हैं, हँसियाँ, खुशियाँ, अट्टहास है, मेला और त्यौहार जैसा उल्लास है, राग हैं, रंग है, रस हैं, भावानुभावों के वैविधपूर्ण पड़ाव है, सामाजिक सरोकार से बँधी नैतिक निष्ठाएँ हैं, प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य के प्रति अति उदार मनस्थिति तथा आत्मसाती संकल्पधर्मिता है, राष्ट्र के प्रति समर्पण है, समाज के प्रति तथा धर्म के प्रति आस्थाएँ और विश्वास हैं, आत्मीय परिकर के प्रति अपनत्व और स्नेह की सरिताएँ-चहैं, मानवमात्र के लिए संवेद्य साहचर्य की मनस्विता है और सर्वोपरी विश्वबन्धुत्व की उदात्त वैचारिकी भी है। साथ में विरह को कातर पीड़ा का एहसास है। दर्द, अवसाद, अभाव, अन्याय, अनीति, शोषण, दमन की रुबरु दास्तान हैं। आँसू हैं, पीड़ा हैं, दुख है और वह सब है जो कवि को हर क्षण व्यथित करता रहता है।

डॉ. तरुण का काव्य : अध्ययन, शोध और मूल्यांकन

श्री 'तरुण' ने अपने सुदीर्घ साहित्यिक जीवन में काव्य, समीक्षा, शोध एवं ललित गद्य के क्षेत्र में विपुल मात्रा में साहित्य रचना की है। उनका रचना-व्याप जितना चौड़ा है उतना ही गहरा भी है। वस्तुतः कोई भी साहित्यकार इसलिए बड़ा नहीं होता कि वह एकाधिक विधाओं में विपुल मात्रा में साहित्य रचना करता है, उसके सर्जन के भीतर छिपा राई के दाने-सा भी कोई नन्हा आलोक बिन्दु उसके जीवन को दैदीप्यमान करने के लिए पर्याप्त समर्थ होता है। 'तरुण' आज हिन्दी साहित्य क्षेत्र की उन इनी-गिनी प्रतिभाओं में से एक हैं जिनमें वैविध्य, विस्तार और गहराई एक साथ उपलब्ध है।

श्री 'तरुण' ने अपने बहु-आयामी सर्जनरत जीवन में अपने सभी रुपों - कवि, समीक्षक, शोधक, निबन्धकार, कहानीकार, शिक्षक, प्रशासक आदि के दायित्व का निर्वाह सफलतापूर्वक किया है, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि उनके सभी साहित्यिक रुपों में उनका कवि-रुप ही प्रमुख है। यह भी सत्य है कि एक अकेला कवि-रुप ही उन्हें हिन्दी-साहित्य में स्पृहणीय ऊँचाई पर प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त है। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों के प्रति ईमानदार 'तरुण' ने कविता के लिए कविता नहीं की, बल्कि कविता उनके लिए आत्म प्रकाशन जीवनाभिव्यक्ति का माध्यम है। जो भीतर से मथित होकर उमड़ा उसे अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने कविता को ही सर्वप्रिय एवं सर्वोपरि माध्यम माना।

'तरुण' का काव्य कोरा भावनाओं का उन्माद नहीं, वह आज के जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करता है। उसमें जीवन को उसकी समग्रता में ग्रहण और प्रस्तुत किया गया है। प्रो. कल्याणमल लोढ़ा के शब्दों में वह 'जीवन की विराटता का एक संश्लिष्ट चित्र है।' वह

कवि की गहन सवेदना और दृष्टिकोण की व्यापकता एवं उच्चता का प्रतीक है । मानव के अन्तःबाह्य सम्पूर्ण जीवन का चित्र होने के कारण वह वैविध्य-वैचित्र्य से भरपूर है । रचयिता की संवेदना और भाव सत्यता के कारण उसमें सजीवता और प्रभविष्णुता का गुण विद्यमान है । वह रचयिता की काव्य-चेतना की उज्ज्वलता, गहराई व विशालता का स्वयंसिद्ध प्रमाण है । क्षुद्र रजकण से लेकर विराट आकाश तक उसकी काव्यवस्तु का प्रसार है । उसमें चित्रित प्रकृति का फलक ही कितना विशाल है । प्रकृति के साथ तन्मयता और तल्लीनता की प्रवृत्ति 'तरुण' के पास इतनी अधिक है कि स्वयं प्रकृति के सुकुमार कवि पन्त भी उस पर मुग्ध हो उठे है - 'प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में कवि का सौन्दर्य-बोध विशेष रुप से निखर उठा है ।... उसके निरीक्षण में कवि-हृदय का भावना-विलास धूप-छाँव की तरह घुल-मिल गया है । प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करने तथा नैसर्गिक वातावरण की अवतारणा करने में कवि को अत्यन्त सफलता मिली है ।'

प्रकृति चित्रण के साथ ही 'तरुण' के काव्य में मानव-हृदय व मानव-जीवन के समस्त आरोह-अवरोह शब्दबद्ध किये गये है । मानव-हृदय में उठनेवाली विविध गहराइयों व आयामोंवाली भाव-लहरियाँ चित्रित की गई हैं । 'एक कल्पनाशील सच्चे कवि की तरह 'तरुण' की सारी चिन्ता का केन्द्र है, 'जीवन' । जीवन के उतार-चढाव, जीवन की उदग्रता, व्यग्रता, खींचातान, अश्रुहास, निर्माण और ध्वंस, सम्पन्नता-विपन्नता, सभ्यता-असभ्यता आदि के द्वन्द्व के बीच यात्रा..... उनकी ढेर सारी कविताएँ इसी युग बोध और युग सत्रास की गवाही देती है... वे चिर अजेय तारुण्य के प्रौढ कवि हैं ।

प्रकृति-चित्रण के साथ ही 'तरुण' के काव्य में मानव-हृदय व मानव-जीवन के समस्त आरोह-अवरोह शब्दबद्ध किये गये हैं । मानव-हृदय में उठनेवाली विविध गहराइयों व आयामों वाली भाव-लहरियाँ चित्रित की गई हैं । 'एक कल्पनाशील सच्चे कवि की तरह 'तरुण' की सारी चिन्ता का केन्द्र है, 'जीवन' । जीवन के उतार-चढ़ाव, जीवन की उदग्रता, व्यग्रता, खींचातान, अश्रुहास, निर्माण और ध्वंस, सम्पन्नता-विपन्नता, सभ्यता-असभ्यता आदि के द्वन्द्व के बीच यात्रा... उनकी ढेर सारी कविताएँ इसी युग बोध और युग संत्रास की गवाही देती है... वे चिर अजेय तारुण्य के प्रौढ कवि है ।

वस्तुतः 'तरुण' के काव्य में जीवन के भोगे हुए विष-अमृत, प्रकाश-अन्धकार, प्रेम-घृणा, हर्ष-विषाद, हिंसा-करुणा, हास-रुदन, असन्तोष-आक्रोश, राग-विराग, मदिर रुमानियत, भक्ति-भावना, स्वर्गीक शान्ति, भीषण संत्रास, आत्महता बोध व दुर्दभ-जिजीविषा-सबका चित्रण एक साथ हुआ है । उनके काव्य में ग्राम्य परिवेश की सौम्य शांति भी है और महानगरीय तुमुल कोलाहल भी, स्वस्थ परम्परा भी है और आधुनिकता भी । साहित्य में मान्य सभी रसों का परिपाक भी उसमें हुआ है । वास्तव में 'उनकी विषय-वस्तु में इतना विशाल और दीर्घ दिक्-काल समाया हुआ है कि 'निराला' के पश्चात् कवि 'तरुण' में ही इतनी विस्तृत विषय-विविधता देखी जाती है । उनकी विषय-वस्तु में वर्ड्‌ सवर्थ, रॉबर्ट फ्रॉस्ट, शैले, कीट्स आदि की स्वच्छन्दता, शक्ति और उल्लास दिख पडते हैं । वे शीर्षस्थ विश्व-कवियों के समानान्तर अपनी विषय-वस्तु योजना ग्रहण किये हुए हैं ।

'तरुण' के काव्य के इतने वैविध्य और विस्तार के बावजूद विशेष बात यह है कि कहीं भी उसका काव्यगुण क्षीण नहीं होने पाया है । कवि अपनी पीडा व सजग संवेदनाओ, अद्‌भुत क्षमता और सन्तुलित प्रतिभा के बल पर ही जीवन के सुदूर विपरीत दोनों ध्रुवों को एक साथ पकडे हुए हैं, साधे-सँभाले हुए हैं । इस प्रकार एक ही हृदय मे प्रकृत-भाव से जीवन के दोनों छोरो का विद्यमान होना वास्तव में एक विलक्षण बात है । 'तरुण' के काव्य की इसी विशेषता से सम्बद्ध प्रबुद्ध समीक्षक डा. सत्यवीर सिंह की यह टिप्पणी यहाँ उल्लेखनीय है - 'जीवन के कटुतम, मधुरतम और तेजोदीप्त सीमान्तों को छूनेवाला आत्मद्रव, यहाँ लबालब भरा मिला.. । यहाँ मात्र कवि नहीं, एक वर्ग नहीं, राष्ट्र, विश्व और एक युग बोलता है ।

और, किसी एक ही कवि के काव्य में वस्तु के अनुरुप बदलते शिल्प के नमूने देखने हों तो 'तरुण' की रचनाओं में देखें। जहाँ प्रकृति-श्री का सूक्ष्म अंकन हुआ है, वहाँ शिल्प का महीन व सूक्ष्म सौन्दर्य देखते ही बनता है। रोमानी भावों को वाणी देते समय भाषा जहाँ स्वतः मसृण व सुकोमल हो गई है, वहीं कटु यथार्थ और जीवन की विषमता प्रखर व्यंग्यमयी भाषा में अभिव्यक्त हुई है। रोमानी क्षणों में जिस कवि की सुधामुखी लेखनी मधुर-मादक संगीतमयी स्वर लहरियों पर नृत्य करती है, वही विद्रूप जीवन से उपजे असन्तोष एवं आक्रोश के क्षणों मे तीखी व काँटेदार हो जाती है। कवि का शिल्प कहीं भी ऊपर ओढ़ा हुआ नही है। भीतर से जो भी भावधारा उमडी उसने अपने अनुकूल अपने प्रवाह पथ का निर्माण स्वयं कर लिया है। अतः 'तरुण' की काव्य कला बाह्यारोपित न होकर अन्तःस्फुटित है। 'उसका उद्गम किसी छिछले स्तर पर नहीं, दूरवर्ती गहराइयों में है।'

ऐसी विलक्षण विशेषताओं से युक्त काव्य के स्रष्टा 'तरुण' अपने रचनाकाल के प्रारम्भ से ही सजग संवेदनशील कवियों, बुद्धिजीवी पाठकों, काव्य रसिकों एवं सहृदय समीक्षकों के खुले वातायन से बहुप्रशंसित एव बहुचर्चित रहे हैं। समय समय पर अनेक रसप्रवण कवियों एव मर्मज्ञ समीक्षकों द्वारा उनके काव्य का मूल्यांकन, शोध एवं समीक्षण होता रहा है। इस विश्लेषण-विवेचन के चलते कवि के अनेक रुप सामने आए हैं, यथा 'तरुण' आशा, आस्था, विश्वास और कर्मठता के कवि है, वे दीन मानवता और धूल-भरे पथो पर भटकते करुण जीवन के कवि हैं, वे प्रजातान्त्रिक मूल्यों के कवि हैं, राष्ट्रीय भावना के उन्मत्त कवि हैं, जीवन सीमान्तो के कवि हैं, सामाजिक पीड़ा व आधुनिक जीवन संत्रास के कवि हैं, आदि आदि। अभिप्राय यह है कि रसिक पाठक-समाज व प्रबुद्ध समीक्षक-वर्ग ने 'तरुण' के बहुआयामी काव्य को विविध दृष्टिकोणों से जाँचा-परखा है और अपनी-अपनी रुचि-प्रवृत्ति के अनुसार उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

कवि की पहली काव्यकृति 'प्रथम किरण' (१९४८) में व्यक्त कवि के देशानुराग से प्रभावित होकर राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी ने इसकी भूमिका में लिखा - 'इस देश की जलवायु, इसका इतिहास, इसकी पूजा और वन्दना से रामेश्वर का हृदय भरा हुआ है।' 'तरुण' के काव्य में प्रकृति के अनेकानेक बहुरंगी उत्कृष्ट शब्द-चित्र देखकर अनेक कवियों एवं समीक्षकों को अंग्रेजी के प्रख्यात प्रकृति प्रेमी कवि वर्ड्सवर्थ का स्मरण हो आया। आज से ४० वर्ष पूर्व सन् १९५२ में कविवर हरिवंशराय बचन ने लिखा - 'साधारण-से साधारण दृश्यों एवं घटनाओं को अपनी पैनी आँखों से देख उसे अपने हृदय की भावनाओ से इस प्रकार रंजित कर देते हैं कि उनकी रचनाओ को देख सहसा वर्ड्सवर्थ की यह पंक्ति यादा आ जाती है - 'The light that was never on sea or land.' 'तरुण' के प्रकृति चित्रो पर मुग्ध 'बचन' कामना करते हैं कि सारे संसार की प्रकृति के चित्र उकेरने के लिए 'तरुण' को चुना जाये।

'तरुण' की कविताओं में रम्य प्राकृतिक परिवेश व मन की कोमल अनुभूतियों की शीतल, मादक और रंगीन भीनी फुहार की सिहरन के साथ-साथ जीवन की चुनौतियों को स्वीकार कर बाधाओं को ललकारने वाला उद्दाम पौरुष भी है। उनके काव्य के मधु तिक्त काव्यरस में सराबोर प्रख्यात कवि श्री वीरेन्द्र कुमार जैन ने कवि 'तरुण' को पत्र लिखा - 'तुम्हारा यथार्थ सही माने में भोगा हुआ है। X X X तमाम धाराएँ तुममें संगमत है और तुम्हारी कविता एक महाधारा जैसी गर्भवान लगती है।'

अपने सुदीर्घ साहित्यिक जीवन में 'तरुण' किसी वाद, धारा, समूह अथवा प्रवृत्ति से बँध कर नही चले। एक सवेदनशील कवि के रुप में साहित्यजगत् की गति से प्रभावित होते हुए और परिवेश का समस्त रस व प्रभाव ग्रहण करत`हुए जो-जो प्रकृत भाव उनके हृदय में उमडे उन्हें ही अत्यन्त कलात्मक ढंग से काव्य में शब्दबद्ध किया है। डॉ. देवीशकर द्विवेदी ने उन्हें इस अर्थ मे एक प्रकृत कवि माना है - 'प्रकृत कवि देशकाल की सीमा से नहीं बँधता। न विषयों के प्रकार से बँधता है। काव्य उनकी नियति होती है। 'तरुण' जैसे कवि युग-प्रवर्त्तक कवि नहीं होते, चिन्तन कवि होते हैं। ये काव्य के इतिहास-निर्माण में सहायक नही होते, काव्य-इतिहास इनसे

अतिक्रान्त हो जाता है । रसग्राही मनुष्य अपनी सहज अवस्था में सहस्रों वर्षों बाद भी उनमें वही प्राप्त करेगा, जो हम आज प्राप्त कर रहे हैं ।'

'तरुण' के काव्य पर अनेक युगवंद्य साहित्यकारों, प्रबुद्ध समीक्षकों एवं विद्वान शोधकों की इस प्रकार की सैकड़ों समीक्षात्मक टिप्पणियाँ एवं शोधपूर्ण लेख कवि के पास मूल रुप में सुरक्षित हैं । उनके काव्य पर पुस्तकाकार रुप में समीक्षात्मक ग्रंथ 'डॉ. तरुण : दृष्टि और सृष्टि' - सन् १९७८ में प्रकाशित हुआ । इसमें विद्वान लेखक डॉ. शान्तिस्वरुप गुप्त ने कवि की प्रथम तीन काव्य कृतियों 'प्रथम किरण' (१९४८), 'हिमांचला' (१९५२) तथा 'आँधी और चाँदनी' (१९७५) के आधार पर उनकी काव्य प्रतिभा का मूल्यांकन अति व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रुप में प्रस्तुत किया है । इसके अतिरिक्त 'तरुण' के काव्य के विविध पक्षों पर अनेक विद्वान समीक्षकों तथा प्रख्यात कवियों द्वारा की गई आलोचनात्मक टिप्पणियों, लेखों एवं सम्मतियों के संकलन का सद्प्रयास डॉ. ओमानन्द सारस्वत ने 'कविवर तरुण : सर्जन के चरण' (१९७८) नामक ग्रंथ में किया ।

कविवर 'तरुण' के समस्त काव्य का अन्तरंग मूल्यांकन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करने वाली एक अन्य महत्वपूर्ण समीक्षात्मक कृति है - 'कवि 'तरुण' का काव्य : संवेदना और शिल्प ।' प्रख्यात साहित्यकार एवं विद्वान समीक्षक डॉ. सन्तोष कुमार तिवारी (प्रो. हिन्दी विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह, म.प्र.) द्वारा सम्पादित यह ग्रंथ सन् १९९० में प्रकाशित हुआ । इसमें 'तरुण' के समस्त काव्य कृतित्व पर कुल २६ समीक्षात्मक एवं शोधपूर्ण लेख संकलित हैं । विद्वान समीक्षकों ने कवि के कृतित्व को हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में भली भाँति मूल्यांकित किया है ।

'तरुण' के काव्य में वस्तु-वैविध्य इतना सशक्त है कि उसका मूल्यांकन समीक्षण करते समय समीक्षकों ने विभिन्न सन्दर्भों में तुलना एवं पुष्टि के लिए हिन्दी के अनेक प्राचीन व नवीन कवियों तथा देश-विदेश की अनेक प्रतिभाओं का सहज स्मरण किया है । भारत की ऐसी कुछ महान साहित्यिक विभूतियों में - संस्कृत के महान कवि कालिदास, जयदेव, मैथिलकोकिल विद्यापति, मध्ययुग के भक्त कवि सूर, तुलसी, कबीर, जायसी, मीरा, रीतिकालीन कवि बिहारी, रसलीन, भूषण, युग प्रवर्त्तक भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, बच्चन, दिनकर, मुक्तिबोध, अज्ञेय, नरेन्द्र शर्मा, धर्मवीर भारती, नवीन, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तथा कन्नड के कवि बेन्द्रे आदि है ।

रससिद्ध कवि 'तरुण' की श्रृंगारपूर्ण रचनाओं में शब्दमैत्री, मधुरलय तथा कोमलकान्त पदावली हमें जयदेव और विद्यापति की याद दिलाती है तो 'हिमाचली' की अनेक रचनाओं में भूषण जैसी ओजस्वी पदावली देखने को मिलती है । 'तरुण' की भक्ति-भावना उन्हें मध्ययुग के वैष्णव भक्त कवियों के निकट ले जाती है । कबीर व मीरा के समान वे पीड़ा की प्याली को मधुमय मदिरा समझकर सिर आँखों पर धारण करते हैं । समीक्षकों ने कवीन्द्र रवीन्द्र का भी अनेक बार स्मरण किया है ।

नारी सौन्दर्य का चित्रण करने वाली कुछ रचनाओं में नख-शिख वर्णन रीतिकालीन शैली में हुआ है, लेकिन अपनी रुमानियत, प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य की सुकुमारता, भावों की रंगीन मादकता तथा सूक्ष्म तूलिका-कौशल की दृष्टि से 'तरुण' के प्रारम्भिक कृतित्व पर पड़े इस प्रभाव के बावजूद भी 'उनकी मौलिकता अपनी जगह अक्षुण्ण है ।' छायावाद के स्तम्भ कवियों से तुलना करते हुए भी उनकी मौलिकता स्वीकार करते हुए डॉ. सन्तोष कुमार तिवारी एक स्थल पर लिखते है - 'तरुण' का श्रृंगार निराला की परम्परा में एक पौरुषवान कवि का स्वस्थ प्रणय है । पंत की तरह इसमें सौन्दर्य के साथ पावनता और शिव का सामंजस्य है । यह विशेषता 'तरुण' को अन्य कवियों से अलग खड़ा कर देती है और हिन्दी साहित्य में उनकी अलग पहचान बनाती है ।'

'तरुण' की रचनाओं में व्यक्त आधुनिक जीवन-बोध अनेक स्थलों पर दिनकर, नवी, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि आधुनिक कवियों से समानता रखता है। कभी वे आधुनिक जीवन की विसंगतियों से विक्षुब्ध होकर 'दिनकर' और 'नवीन' की भाँति तबाही को निमंत्रण देते है, तो कभी वे मैथिलीशरण गुप्त की भाँति (नर हो, न निराश करो मन को) मृतप्रायः मानव जाति में आशा का संचार करते है।

'तरुण' की काव्य रचनाओं में भावकोष की सम्पन्नता, वैविध्य-विस्तार और तदनुरुप शिल्प के अनेकविध रंग देखकर कुछ समीक्षकों ने तुलना व समानता तथा काव्य-मूल्यांकन के लिए समुचित भूमिका व सन्दर्भ प्रदान करने के लिए अन्य देशों की महान विभूतियों का भी उल्लेख किया है, जिनमें होमर, शेक्सपीयर, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, बायरन, गोल्डस्मिथ, शैले, कॉलरिज, टेनीसन, कीट्स, इलियट, वाल्ट ह्विटमैन, पाब्लो, नारुदा, कीर्के गार्ड, कामू, काफ्का, जार्ज आर्वेल, विलियम बरोज तथा गोर्की सरीखे विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार भी हैं। 'तरुण' के मदिर गीतों में कीट्स जैसी ऐन्द्रियता है। प्रकृति गीतों में वर्ड्सवर्थ की-सी भावना से रंजित सुकुमार कल्पना है।

कालान्तर में जब कवि का जीवन के कटु यथार्थ से सामना होता है तो वह ईलियट, कामू व काफ्का के समान युग की भयावह विसंगतियों का मार्मिक चित्रण करता है और गिन्सबर्ग, विलियम बरोज तथा जार्ज आर्वेल के समान आज की तमोमयी सत्ता और घातक व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए ध्वंस को निमंत्रण देता है।

कवि की कुछ रचनाओं में कीर्के गार्ड की भांति आत्महंता या मृत्यु-बोध भी अभिव्यक्त हुआ है, लेकिन ऐसे विषाक्त वातावरण में गोर्की के 'लूका' के समान कवि की ज्योतिजीवी आस्था सतत जगमगाती रहती है। 'कवि 'तरुण' ने वेदना और पीड़ा के, घुटन और स्वप्न-भंग के गीत गाए है। पर वह इसे ही जीवन का चरम सत्य स्वीकार नहीं करता। जीवन के उच्चतर मूल्यों में और मानवता में, सामाजिक न्याय भावना में, राष्ट्रीय आत्मैक्य में और फिर जीवन के मृदु-कोमल पक्षों में उसकी आस्था ने उसे आधुनिक विश्व की विध्वंसकारी स्थितियों से ऊपर उठाया है... ।'

निस्सन्देह 'तरुण' के काव्य की विषयवस्तु जितनी गरिमापूर्ण है, शिल्प उतना ही भव्य है। आशय की गहराई एवं उच्चकोटि की कला से युक्त होने के साथ साथ उसका चित्रफलक वैविध्यपूर्ण और अत्यन्त विशद है। एस सजग चिन्तक, संवेदनशील कवि तथा सौन्दर्य चेतना से युक्त कलाकार के काव्य का इन विशेषताओं से युक्त होना स्वाभाविक ही है। अपनी विविध सहज अनुभूतियों के बल पर ही कवि क्षितिज-सा विस्तार लेकर चला है परिवेश का समस्त मधुतिक्त रस ग्रहण करते हुए, समस्त काव्य-आन्दोलनों को आत्मसात करते हुए वह अपनी काव्य-गगरी में एक बड़ा आकाश समेट पाया है। प्रख्यात शिक्षाविद् एवं प्रबुद्ध समीक्षक डा. विजयेन्द्र स्नातक 'तरुण' के वैविध्यपूर्ण काव्य के विविध स्रोतों पर विचार करते हुए लिखते हैं - 'खुला विराट संसार, गतिशील समाज, कवि मन, मानव का संकुल जीवन जो कुछ भी गहरी संवेदना प्रदान करने में समर्थ है, वही सब कवि 'तरुण' की सर्जना का अखण्ड व विश्वसनीय स्रोत आज तक उनके काव्य में बना रहा है... ।'

अपनी विशद और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के बल पर कविवर 'तरुण' ने अपने काव्य में जीवन का एक ऐसा विशाल और व्यापक फलक प्रस्तुत किया है जो इनमें महाकवित्व के शक्तिबीजों की ओर सहज संकेत करता है। यद्यपि उन्होंने औपचारिक रूप से अब तक कोई महाकाव्य नहीं लिखा है, किन्तु क्या महाकाव्य के लिए निर्धारित स्थूल लक्षणों - कथानक, मंगलाचरण, सर्ग-योजना, पात्र योजना, छन्द-वैविध्य, छन्द परिवर्तन का स्थान आदि का निर्वाह ही किसी को महाकवि सिद्ध कर सकता है ? क्या जो उपादान और तत्त्व 'तरुण' के काव्य में प्रभूत परिमाण में यहां से वहा तक सहज उपलब्ध है, वे इनकी चेतना को महाकवि की चेतना का स्वर प्रदान नहीं करते ? डा.

ओमानन्द सारस्वत भी नये ढंग के महाकवि के कृतित्व का सही आधार महाकाव्य के बाह्य औपचारिक ढांचे में न मानकर कवि की 'उस दृष्टि, चेतना, गाम्भीर्य, सूक्ष्मता, बारीकी या पारदर्शिता में" मानते हैं जो 'सब मिलकर काव्य को व्यापक रुप में ग्राह्य व रमणीय बनाती है, पाठक की चेतना की गहरी परतों में उतरती है और अपनी प्रतिभा की गुणवत्ता से मत्रमुग्ध कर देती है।' अन्त में डॉ. सारस्वत अपने मत की विश्वास-बलपूर्वक स्थापना करते हुए कहते हैं - 'कविवर 'तरुण' में वे शक्ति तत्त्व भरपूर रुप में विद्यमान हैं जिनके सानुपातिक संगठन से महाकवि अथवा महाकवित्व का पुष्ट निर्माण होता है।'

वस्तुतः यदि महाकाव्य के ऊपरी स्थूल लक्षणों से परे नये सन्दर्भो में वास्तविक महाकवित्व की खोज की जाये और 'तरुण' के काव्य में चरम आशय की उच्चता व गूढ़ता को दृष्टि में रखा जाये तो हम पायेंगे कि उनके काव्य में विराट और रमणीय प्रकृति का विशाल फलक उनके हृदय में युग पीड़ा के गहरे स्रोत, मानव-नियति के प्रति कवि की गहरी चिन्ता, मानवीयपूर्णता का समृद्ध स्वप्न उनकी सृजन-प्रेरणा, वस्तु सत्त्व, भाव-स्तर, भावानुभव की क्षमता, भावको, की सम्पन्नता, कल्पना-वैभव, जीवनानुभव का विशाल फलक एवं महाकाव्यकार की सूक्ष्म दृष्टि उनके महाकवित्व को पुष्ट करती है।

विगत तीन चार दशकों से अन्य अनेक साहित्य समीक्षकों ने 'तरुण' के काव्य एवं साहित्य का अपनी अपनी रुचि एवं प्रवृत्ति के अनुसार आस्वादन कर उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। औपचारिक एवं अनौपचारिक शोधकों ने उनके काव्य में विद्यमान वैशिष्ट से भरपूर भावको, तथा बहुरंगी शिल्प की विविध भंगिमाओं का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन विश्लेषण किया है।

एक शोधक की विश्लेषणमयी दृष्टि से ऊपर उठकर काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों के चौखटे से बाहर निकलकर 'तरुण' की समूची गीत चेतना पर एक संश्लिष्ट दृष्टि रखते हुए मैं एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि वे एक सम्पूर्ण साहित्यकार हैं। सम्पूर्ण साहित्यकार से मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि वे एक सम्पूर्ण साहित्यिक विधाओं में कितने ग्रंथ लिखे हैं, (निश्चय ही उन्होंने उपन्यास, नाटक 3 एकांकी आदि नहीं लिखे है, फिर भी इन विधाओं के तत्व 'तरुण' के सृजन में प्रभूत परिमाण में बिखरे पड़े है) अपितु उनके काव्य में निहित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदार एक सच्चे साहित्यकार की संश्लिष्ट चेतना को दृष्टि में रखते हुए ही मैं यह बात कह रही हूँ।

इस निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व मेरे कुछ महत्वपूर्ण दृष्टिबिन्दु रहे है, यथा ६० वर्ष के सर्जनकाल में श्री 'तरुण' का सर्जनात्मक प्राण-प्रवाह कितना ऊर्ध्वगामी, प्रखर व तीव्र रहा है, उनमें कितना जीवनोत्साह रहा है और उस उत्साह का उन्होंने कितना सर्जनात्मक प्रयोग किया है, उनकी जीवन-विषयक अन्तर्दृष्टि कितनी मानव मंगल की भावना से सतत प्रेरित रही है और उसे कितनी सुगढ़ता से, कितनी कलात्मकता से बाहर कागज पर बिछाया है, बुद्धि, विचार, भावना और कल्पना के तत्व कितनी मधुरता से और कितने स्वस्थ अनुपात में उनके साहित्य में संयोजित हुए हैं, विविध अनुशासनों में रचनात्मक साहित्य का गौरव कितना सुरक्षित व समुन्नत हुआ है और सातत्य से लगे रहे हैं। 'तरुण' के सम्पूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व का आकलन करने में इन सब बातों को हिसाब में लेना होगा। और मेरी दृष्टि में किसी भी साहित्यकार की देन और चरम मूल्यांकन का अवगाहन करने में ये ही बातें प्रमुख हो सकती है। इस ढंग से सोचने पर केवल विधाओं का वैविध्य और विस्तार अनन्तः अपेक्षा कृत छोटी ही बात रह जाती है।

मैं अपनी दृष्टि को संक्षेप में यहां प्रस्तावित मात्र ही कर रही हूँ। 'तरुण' के सम्पूर्ण कृतित्व को नापने, जाँचने व थाहने की अन्य दृष्टियाँ भी अवश्य ही हो सकती हैं और वे मूल्यवान भी हो सकती हैं, पर 'तरुण' के साहित्य का गहन अध्ययन व सूक्ष्म अनुशीलन कर चुकने के पश्चात उनकी समूची साहित्यिक चेतना को दृष्टि में रखते हुए मैं अपनी परम आस्था के साथ कहना चाहती हूँ कि उनके साहित्य में बहुत कुछ ऐसा है जो उन्हें एक सम्पूर्ण साहित्यकार की गरिमा से युक्त बनाता है।

डॉ. 'तरुण' का पहला काव्य संग्रह है - 'प्रथम किरण' जो सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ। यानी डॉ 'तरुण' की काव्य यात्रा चौथे दशक के अन्त में शुरू हो गई थी। यह वह समय था जब कविता प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और व्यक्तिवादी गीत-कविता के माध्यम से अलग अलग ढंग से छायावादी कविता के प्रभाव क्षेत्र से बाहर होने का प्रयत्न कर रही थी। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद ने तो कुछ अलग रास्ता चुना (गो कि वे भी छायावाद के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं हुए थे) किन्तु व्यक्तिवादी गीत कविता तो छायावाद के रास्ते पर चलकर ही उससे अलग होने की कोशिश में थी। उसने छायावाद की रूमानी संवेदना का ही निर्वाह करते हुए नारी और प्रकृति को अनपे केन्द्र में रखा। छायावाद का श्रृंगार, उसका संयोग-वियोग, उल्लास और पीड़ा, स्वप्न और स्वप्न-भंग यहाँ भी दिखाई पड़ता है, प्रकृति के प्रति रुमानी लगाव यहाँ भी है किन्तु यहां रहस्य का कुहरा नहीं है। यहाँ नारी नारी के रूप में है, प्रेम लौकिक है, वह अलौकिक का भ्रम नहीं पैदा करता, प्रकृति भी कुछ लोक-प्रकृति के आस पास है और बाषा साफ है। उसमें उलझन के स्थान पर बहाव है और जटिल संस्कृत शब्दों की श्रृंखला के स्थान पर छोटे छोटे बिखरे बिखरे शब्द हैं और लोक जीवन के बीच से प्रतीकों और बिम्बों के ग्रहण की आहट है।

डॉ. 'तरुण' की प्रारम्भिक कविताएँ इसी धारा की हैं। 'बचन', 'दिनकर', नरेन्द्र शमा और कुछ अंशो में 'अंचल' इस धारा के विशिष्ट कवि है। इनके माध्यम से एक नयी काव्य-धारा प्रवाहित हुई और इन कवियों के नए विशिष्ट अनुभवों ने इस धारा को रचनात्मक उललब्धि प्रदान की। इस धारा में बाद में अनेक नए कवि सम्मिलित हुए - मसलन, शंभुनाथसिंह, जानकी वल्लभ शास्त्री, आरसी प्रसाद सिंह, सुभद्रा कुमारी सिन्हा आदि। डॉ. 'तरुण' भी इनके ही बीच आते हैं। इन परवर्ती कवियों में व्यक्तिवादी गीत कविता भी सभी विशेषताएं हैं किन्तु वह वैशिष्ट्य नहीं जो बचन, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर आदि में है। लगता है एक बनी-बनायी धारा में प्राप्त विषय और भाषा को अपने-अपने ढंग से माँज-सँवारकर ये कवि अपने भावुक उद्गार व्यक्त कर रहे हैं। यानी ताजगी का अंवशिष्ट लेकर चल रहे हैं।

यह सही है कि डॉ. 'तरुण' के पहले संग्रह की कविताएँ इनकी कोई पहचान नहीं बनातीं : (कुछ कविताएँ अपवादस्वरुप कही जा सकती हैं - शिशु के चित्र (४२), गाँव की ओर (४३), गाँव की साँझ (४४), मरु का चन्द्रोदय (४६)), किन्तु इनमें विषय का वैविध्य है और प्रारम्भिक अवस्था में ही छन्द और भाषा में अद्भुत परिमार्जन लक्षित होता है। १९३९ में लिखी गई 'आँसू' कविता की कुछ पंक्तियायें देखें :

यह आँसू रसमय कितना है !
मेरे मन मे भाव मनोरम
भरे हुए हैं सुन्दरतम
शब्दातीत, गहन अति अनुपम
व्यक्त उन्ही को करने के हित यह मेरे मन की रसना है।

स्पष्ट है कि इसके कथ्य में कोई नवीनता नहीं है और भाषा में भी कोई वैशिष्ट्य नहीं है, किन्तु एक बीस वर्षीय कवि का भाषा और छन्द का परिमार्जन अपनी ओर ध्यान अवश्य आकृष्ट करता है। विरले प्रतिभावान कवि होते हैं जो परम्परा के प्रभाव से ग्रस्त न होकर एक नयी चेतना, नयी संवेदना और नयी अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य से ही अपनी काव्य-यात्रा शुरु करते हैं। इस प्रतिभावानों में से बहुत-से कवि ऐसे भी होते हैं जो काफी देर तक परम्परा के प्रवाह में बहते रहते हैं, और एक दिन वे उपलब्धि के शिकर को छू लेते हैं। इसलिए डॉ 'तरुण' की प्रारम्भिक काव्य-यात्रा यदि छायावाद की कवित की गीत-कविता के प्रभाव को लेकर चली है तो इसमें कोई

नयी बात नहीं है । इस प्रभाव के अन्तर्गत ही कवि ने सौन्दर्य ौर प्रेम, दुःख और सुख, याचना और संघर्ष का विधान किया है, कुछ पारिवारिक कविताएँ लिखीं और प्रकृति के अनेक रुपों का चित्रण किया ।

कवि का दूसरा कविता संग्रह 'धूपदीप' सन् १९५१ में आया । कविता लिखते चलेजाना ही पर्याप्त नहीं होता, कवि को यह भी देखना होता है कि कविता का नया मिजाज क्या है ? मैं उस मिजाज की बात कर रहा हूँ जो नए परिवेश और समय की नयी चेतना से प्राप्त होता है । विदेशी नकल पर तो मिजाज यों ही नबते-बिगड़ते रहते हैं और उनका कोई स्थायी मूल्य नहीं होता । सन् १९५० के आस-पास नयी कविता का दौर शुरु होता है किन्तु प्रयोगवाद और प्रगतिवाद ने उसे भूमिका पहले ही प्रदान कर दी थी । आश्चर्य है कि १९५१ में प्रकाशित 'धूपदीप' में 'तरुण' की भक्तिपरक कविताएं हैं । इस कविता का न तो 'तरुण' की तरुणाई से मेल खाता है और न समय की तरुणाई से । ये तो शुद्ध परिपाटी पर कल्पना से बनी हुई कविताएँ है, इनमें अनुभव की ऊष्मा का स्पर्श भी नहीं है । बस अधिक-से अधिक यही कहा जा सकता है कि यह रचना कवि की अपनी केन्द्रीय सर्जन-धारा के मेल में नहीं है, किसी विशेष मनोप्रवाह के अन्तर्गत यह रचना भी बस बन गई ।

और इसी संग्रह के साल भर बाद 'हिमांचला' (१९५२) प्रकाशित हुई । इस संग्रह की कविताओं में प्रमुखतः प्रकृति और नारी-सौन्दर्य का चित्रण है । नारी-सौन्दर्य और प्रेम के स्वरुप तथा अभिव्यक्ति में ऐसा कोई आयाम नहीं उभरता जो इन कविताओं को इनके समय के संदर्भ में जोड सके । पारम्परिकता को ही अधिक परिमार्जित रुप में प्रस्तुत किया गया है । उसमें कवि की तन्मयता, आकुलता आदि के दर्शन तो अवश्य होते हैं, लेकिन लगता है कि कवि समय के काव्य-परिप्रेक्ष्य से जुडने के लिए विशेष सचेत नही है । वह शायद उससे जुडने को रचनात्मक स्तर पर आवश्यक भी नहीं मानता । हाँ, प्रकृति के लोक रुप की ओर उन्मुख होने की उत्सुकता । गेंदा के फूल (५०), तथा सन् ५१ में लिखित कविताएँ - सरसों के फूल, चिड़ियाँ, पंछी, पिंजरे के तोड़ द्वार, ग्राम-वधू, सरला, माटी के घर, खेत की ओर जैसी कई कविताएँ - परिपाटीबद्ध प्रकृति-संवेदना के भीतर से नयी संवेदना की प्रभावशाली आहट देती हैं । यह आहट कुछ श्रृंगारिक कविताओं में भी उभरती है -

ग्राम-विरहिणी दीप जलाती
पिया गये परदेस, न आई अब तक हाय पहुँच की पाती
एकाकी घर, सूा आँगन
ज्वर से पीड़ित बच्चे का तन
भरकर तेल स्नेह का गहरा, डाल भावनाओं की बाती ।

या, समय-क्रम में थोड़ा आगे (सन् ५२) की यह रचना -

मोरी कैसे कटेगी कारी रैन, दीये में बाती-तेल नहीं
सायँ-सायं कर रात बोलती खड़े झाड़-झंखाड
सांप सलेटे डोलें, फैले जंगलओर पहाड़
डरपे-डरपे से गूँगे मेरे नैन, दीये में बाती-तेल नहीं ।

यह सही है कि कई लोकोन्मुखी कविताओं में भाषा छायावादी भाषा की तत्समता के भार से मुक्त नहीं हो सकी है फिर भी लोक-

भाषा की ओर उनका खिंचाव भाषा में नयी चमक भरता हुआ दिखाई देता है । उपर्युक्त कविताओं में प्रेम-जन्य संवेदना लोक-प्रकृति के संदर्भों से जुडकर अधिक प्रभावशाली और नयी हो गई है । पारिवारिक संदर्भ के कुछ अभाव दृश्य (ज्वर से पीडित बच्चे का तन, दीये में बाती तेल नही आदि) प्रेम की वेदना को नये आयाम दे देते हैं । वास्तव में सन ५० के आस पास का समय वह समय था जब नयी कविता और उसके गीतों में लोक-सम्पृक्ति एक नया और गाढ़ा रंग भर रही थी । परिवेश के अनुभवों के कारण कविता हमारे आस पास की, हमारे बीच की चीज दिखाई देने लगी थी । डॉ. 'तरुण' की ये कुछ कविताएँ उन्हें अपने समय से जोड़ती हैं और स्वयं उनकी नयी रचनात्मक उपलब्धि की संभावना पैदा करती है ।

आँधी और चाँदनी (१९७५) से डॉ. तरुण की एक सचेत नयी यात्रा शुरु होती है । पुस्तक में नाम से ही ज्ञात होता है कि कवि अब चाँदनी और आँधी दोनों के साथ होना चाहता है । चाँदनी का मोह घटा नहीं है किन्तु वह समझता है कि आँधी समय का यथार्थ बनती जा रही है, इसलिए उससे रुबरु हुए बिना काम नही चलेगा । आँधी और चाँदनी दोनों का द्वन्द्व भी सर्वत्र व्याप्त हो रहा है । इसलिए कवि इस संग्रह की पहली ही कविता में अपने बदलाव की घोषणा करते हुए कहता है -

अब तो मैं नहीं रहा हूँ प्रकाश का कवि
और न ही हूँ अंधकार का कवि
अब तो हूँ मैं, वर्षा होते में चमक उठती
सजल चंपई धूप का कवि !

यानी वह उस धूप, प्रकाश का कवि है जो वर्षा की श्यामलता के भीतर से फूटता है । वास्तव में कोई भी सच्चा कवि अंधकार का कवि नहीं होता, वह अंधकार का पारखी जरूर होता है किन्तु वह पक्षधर होता है धूप का ही, प्रकाश का ही । प्रकाश सरल नहीं होता, वह न जाने अँधेरे की कितनी पर्तों से जूझता हुआ फुटता है । डॉ. तरुण बयान के तौर पर इसी सत्य की घोषणा कर रहे हैं ।

इस संग्रह में विषय के विषय में अपेक्षाकृत अधिक वैविध्य हैं तथा संवेदना और भाषा में लोकोन्मुखता आयी है । शुद्ध प्रेम की कविताएँ भी अपना रंग कुछ बदले हुए हैं । लेकिन काफी कविताएँ अभी अपने छायावादी संस्कार से मुक्त नहीं हो सकी हैं । 'सुकुमारि, उठाओ अवगुंठन' जैसी कई कविताएँ इस बात की ओर संकेत कर रही हं कि कवि में अभी चाँदनी, चाँदनी के रुप में ही शेष है । दूसरी ओर 'अपनी कहो कहानी (५५)', 'पहले इनकी सुन लो (७२)', 'चुपचाप (७४), जैसी कई कविताएँ अपनी ताजगी के कारण ध्यान आकृष्ट करती हैं । इनमें भी संस्कृत के तत्सम शब्दोंवाली ही भाषा है किन्तु शब्द छोटे-छोटे और बिखरे-बिखरे हैं । 'अपनी कहो कहानी' में बहुत आत्मीय ढंग से, संवाद की-सी शैली में, सुख-दुख की बहुत मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है ।

'हम शिल्पी संत्रास के' (१९८४) डॉ. तरुण का चौथा काव्य-संग्रह है । इस संग्रह में कवि का स्वर एकदम बदला हुआ है । इसमें कवि ने अपनी कविता के बदलाव की घोषणा ही नहीं की है, सचमुच में उसे बदला भी है । 'मेरी कविता' में उन्होंने अपनी कविता के बदलाव को अधिक स्पष्टता से रेखांकित किया है -

यों गतिमय हो मेरी कविता
पहाडी हवा-सी साँसें धौंकती
मुर्गे की कलगी जैसे अपने लाल सुदृढ फेफड़ों से...

पुष्ट अनार से उभरे वक्षोज हों जिसके
गेहूँ की पकी बालियों के चित्रों से चित्रित
तनी चोली में

इस कविता में कवि ने लोकजीवन के विविध बिम्बों द्वारा लोकजीवन में अपनी कविता की व्याप्ति की इच्छा व्यक्त की है । ऐसा लगता है कि 'आँधी और चांदनी' में जो परिपाटी और नवता का असमंजस था वह इस संग्रह में आकर दूर हो गया है और कवि ठीक अपने समय के सामने खडा है । इन कविताओं में कवि अनेक समकालीन विषयों, संदर्भों, संवेदनाओं, प्रश्नों और मूल्यों से टकराता लक्षित होता है । समय का संत्रास उसके परिपाटीबद्ध मोह को झाड़कर निखालिस रुप में उसके सामने खड़ा है । भाषा में खुरदरापन आ गया है और शिल्प में वैविध्य लक्षित होता है । यह सही है कि अपने समय की सचाइयों की बात करने से ही कविता नहीं बन जाती, कविता बनने के लिए उन्हें कविता की शर्तों से गुजरना होता है । और कविता की एक बुनियादी शर्त यह है कि कवि कुछ चुने हुए बिम्बों के माध्यम से सचाई व्यंजित करे । इस संग्रह में अनेक कविताएँ ऐसी हैं जो कविता की इस शर्त से गुजरती हैं अतः गहरा प्रभाव छोड़ती हैं । मेरी ये आँखें (६२), शोक समाचार (६९), डेमोक्रेसी (६९), धत्तेरे की (७६), खूनी पुल पर से (७७), चोंचों का खेल (८३), चौखटे का अमित (८५), एक-न-एक दिन (९१) जैसी कितनी ही कविताएँ हैं जो अपने समय की या स्वयं के जीवन की सचाईयों को गहरी संवेदना में उतारकर बड़े कौशल के साथ अभिव्यक्ति दे रही हैं । आम जीवन के अनेक दृश्य, प्रसंग, अनुभव, सोज-समझ आपस में अनुस्यूत होकर एक संश्लिष्ट सत्य बिम्ब की रचना कर रहे हैं और भाषा उनकी सहचरी होकर ठोस जीवंत शब्दों की शक्ति से मूर्त हो उठी है । लेकिन ऐसी कविताओं की कमी नहीं है जिनमें कवि स्वयं इकहरे ढंग से बास कह देता है, और बात भी क्या होती है - एक विचार, अपने समय की कोई एक गुलाजत कोई विसंगति या और कुछ । भाषा में कहीं-कहीं विशेषणों की अधिकता-सी दिखाई पड़ती है । अंग्रेजी शब्दों की उपस्थिति भी (युगानुरुप !) अधिक कही जा सकती है । ये कविताएँ अपने समय के यथार्थ के साथ तो हैं लेकिन अपने समय की कविता साथ उतनी नही । इसलिए इनमें यथार्थ की पहचान (इकहरी ही सही) उभरती तो है लेकिन वे हमारी संवेदना पर कभी दस्तक नहीं देतीं । किन्तु जिन अच्छी कविताओं का उल्लेख ऊपर किया गया है वे, तथा वैसी अन्य भी संख्या में कम नहीं है और अपनी काव्यात्मक उपलब्धियों में विशिष्ट हैं ।

कवि 'तरुण' की काव्य-यात्रा अबाध गति से चल रही है और 'हम शिल्पी संत्रास' के में संगृहीत कविताओं के क्रम में, बाद में कवि ने अनेक कविताएं लिखीं जो 'तरुण' काव्यग्रंथावली' (प्रकाशित, १९८९) के 'पहाडी-सांध्य रागिनी' खंड (पृ.४०५ से ४६०) में प्रकाशित है । इन कविताओं की प्रवृत्तिगत विशेषताएँ प्रायः वही है जो 'हम शिल्पी संत्रास के' की कविताओं में दिखाई पड़ी थी, उनकी शक्तियाँ-अशक्तियाँ भी कुछ उसी तरह की हैं । जो कविताएँ मेरी दृष्टि में महत्वपूर्ण लगी, वे हैं जिजीविषा (१९७६), सन्नाटा (८२), मैं झगड आया (८४), क्या हो जाता (८४), देखें क्या बनाता हूँ (८४), चौखटे का अमित (८४), अंधड़ो में छोड़ दो अकेला (८६), मूल्यांकन (८६), दीप जलाया, गीत गाया (८६), सिलसिला (८७), जीवन जगत का लेखा (८८) आदि । डॉ. 'तरुण' की वे कविताएँ अधिक प्रभावशाली हो उठी हैं जिनमें एक सशक्त बिम्ब प्रस्तुत किया गया है और शब्दों के अपव्यय तथा कथन की स्फीति से बचा गया है एवं कथ्य व्यंजित किया गया है । 'हम शिल्पी संत्रास के' तथा अन्य संग्रहों की कुछ ऐसी कविताओं को मैंने रेखांकित किया ही है । 'ग्रंथावली' में और कई काफी अच्छी रचनाएँ हैं जो रेखांकित करने से छूट गयी है ।

और अभी तो 'तरुण' की काव्य-यात्रा जारी है ।....

अन्त में निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि डॉ. 'तरुण' के गीत छायावाद से लेकर आधुनिक कविता तक में वैचारिक पटल को स्पर्श करते हुए अपने विशिष्ट रुप और रंगों की मादकता में सृजित हुए है जिन्हें विरासत के रुप में बहुत कुछ समृद्ध कवियों से अभिनव प्रेरणा और प्रतिभा के प्रतिमानद क्षितिज प्राप्त हुए हैं और जिन्होंने अपनी निजी विशिष्टता से उसे एक नितांत मौलिक पहचान देकर एक प्रकार की विशिष्टता से अभिमंडित किया है । मैं समझता हूँ कि आज के युग में डॉ. तरुण का गीत ही उनकी पावन स्मृतियों का दस्तावेज है । कवि ने अपनी अभिनव परिकल्पना से अपने बाद की स्थितियों को काव्यांकित करते हुए लिखा है -

जब जलूँगा मैं चिता पर,
मौन होंगे गान मेरे ।
मुक्त होंगे प्रान मेरे ।
पाप सारे शांत होंगे, भस्म होगी देह-नश्वर ।
अग्नि माता गोद लेगी,
और धरती-माँ कहेगी
आ रहा चिरकाल से बिछुडा हुआ शिशु आज घर पर ।
अश्रु कुछ दृग से भरेंगे,
कुछ हृदय आहें भरेंगे,
सृष्टि चलती ही रहेगी यह बिना क्षण एक रुककर ।
जब जलूँगा मैं चिता पर ॥